शिक्षा तथा नीति

प्रियंका शर्मा

व्याख्याता, एच.बी. बंसाली टीटी कॉलेज, दीवानी, सुजानगढ़

परिचय–

शिक्षा का तात्पर्य –

संसार में ऐसे लोगों की संख्या थोड़ी ही होगी जो किसी न किसी रूप से शिक्षा में रुचि न रखते हों। माता–पिता, शिक्षक, विद्यालयों के प्रबन्धकर्त्ता, धर्म प्रचारक और राजनीतिज्ञ–सभी की जिह्वा पर 'शिक्षा' शब्द रहता है। इस समस्या के ऊपर विचार करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि 'शिक्षा' शब्द प्रयोग करते समय उनके मन में इसका कुछ विशिष्ट अर्थ रहता है। परन्तु शिक्षा शास्त्र (थ्योरी ऑफ एजुकेशन) ऐसी यदि कोई वस्तु है, तो उसका एक उद्देश्य यह है कि वह शिक्षा के प्रचलित अर्थो की समीक्षा करे और उनकी त्रुटियों को दिखावें। यह कार्य अनावश्यक नहीं है क्योंकि शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्य से ही अपने कार्य में प्रेरणा मिलती है। शिक्षा की वर्तमान अराजकता तथा उसकी निष्फलता के दो प्रमुख कारण हैं– एक तो शिक्षा तो शिक्षा का स्पष्ट और यथार्थ उद्देश्य हमारे सामने नहीं है और दूसरे जो है वह भ्रम और त्रुटियों से शून्य नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि हम प्रारंभ में ही शिक्षा की परिभाषा पर समुचित विचार कर लें, जिससे कि आगे चलकर शिक्षक के कर्तव्यों पर विचार करते सयम कोई भूल न हो जाए।

शिक्षा के दो अर्थ :–

प्रारंभ में हमको शिक्षा के संकीर्ण और व्यापक, दोनों प्रचलित अर्थो पर विचार कर लेना चाहिए। व्यापक अर्थ में जो कुछ अनिश्चित सा है– शिक्षा उस विकास का नाम है जो बचपन से प्रौढ़ावस्था तक होता है। अर्थात् शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिससे मनुष्य अपने को आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। इसी प्रकार के विचारों के कारण रूसो और वर्ड्सवर्थ ने 'प्रकृति द्वारा शिक्षा' के विषय में बहुत कुछ कहा है।

इसी धारणा के अनुसार शिक्षा–क्रम में पुस्तकों का पढ़ना, मैत्री करना, विदेश में वास करना, पैत्रिक तथा नागरिक कर्तव्यों का पालन करना, नियमों तथा रीतियों का अनुसरण करना, किसी धार्मिक सम्प्रदाय की सदस्यता का दायित्व वहन करना इत्यादि बातें हम सम्मिलित करते हैं। परन्तु संकीर्ण अर्थ में जो अधिक निश्चित है– शिक्षा से हम उन विशेष प्रभावों को समझते हैं जिनको समाज का वयस्क वर्ग जान बूझकर निश्चित योजना द्वारा अपने से छोटों पर तथा तरूण वर्ग पर डालता है– यह प्रभाव चाहे परिवार द्वारा पड़े और चाहे धर्म–संस्था अथवा राज व्यवस्था द्वारा। व्यापक अर्थ में शिक्षा का जो मूल्य है, उसे

स्वीकार करते हुए भी हम अपने विवेचन में शिक्षा के संकुचित अर्थ को ही लेंगे और उन्हीं साधनों पर विचार करेंगे, जिनसे बच्चों का विकास नियंत्रित किया जाता है और जिनका उद्देश्य सुचिंतित तथा स्पष्ट है। समग्र विकास के साथ मानवता के विकास के लिए व्यक्ति को शिक्षित होना बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य को लेकर विश्व में शिक्षा को मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता में शामिल किया गया है। सभी देशों में अपने यहाँ के संविधान की समानता के स्थान पर व्यक्ति को शिक्षा प्रदान करने के लिए संकल्प पारित करने की दिशा में कार्य करना प्रारंभ कर दिया है।

शिक्षा जगत में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का अंबार छाया हुआ है और उनमें से एक शोध समस्या है। अनुसूचित जाति के बालक–बालिकाओं में शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति तथा शैक्षिक सुविधाओं का उपयोग करने की प्रवृत्ति ये शिक्षा जगत के सुपरिचित शब्द हैं। भारत की सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति तथा सुविधा की समस्या बहुत अधिक समय से विद्यमान हैं। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों, प्रशासकों एवं प्रबंधन का भी ध्यान महिला शिक्षा की ओर गया है। भारतीय संविधान की धारा–73 के अन्तर्गत बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति एवं अन्य सुविधाएँ शिक्षा के प्रति निर्धारित हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप निर्धारित अवधि में तभी पूर्ण हो सकती है जबकि सुविधा सही तरीके से की जाये।

शिक्षा जगत् में व्याप्त प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्तर के विद्यालय पर शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सुविधाएँ एवं विकास एक सार्वभौमिक समस्याएँ हैं। शैक्षिक अवसरों की समानता व शिक्षा के प्रचार–प्रसार की जितनी भी योजनाएँ आरम्भ की गयी हैं उन सभी का समुचित लाभ इस क्षेत्र की बालिकाओं को नहीं मिल पाया है। शिक्षा जगत में व्याप्त अनेक समस्याओं के साथ ही शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति एवं शैक्षिक सुविधा की समस्या ऐसी भयानक है जो कि शिक्षा जगत की भव्य इमारत की नींव को कमजोर कर रही है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध–गया जिले में–प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर बालिका शिक्षा के विकास हेतु शासन द्वारा संचालित प्रोत्साहन योजनाओं की भूमिका उसका समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। बालिकाएँ यद्यपि शासन द्वारा अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति पाती हैं फिर भी शाला में क्यों नहीं जातीं और यदि जाती भी हैं तो पूरी शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती हैं। अतः शैक्षिक स्थिति के सुधार के लिए वास्तविक स्थिति का अध्ययन तथा उसमें वांछित सुधार हेतु सुझाव देने के लिए शैक्षिक शोध करने की आवश्यकता है।

आज की शिक्षा–प्रणाली अनेक अंतर्विरोधों और अंतर्द्वन्दों से ग्रस्त है। एक साथ कई विपरीत और विरोधी लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयत्नों में वह स्वयं लक्ष्यहीन हो गयी है। बाहरी और भीतरी दबावों से उत्पन्न द्वंद्वों ने उसकी निर्णय–शक्ति को क्षीण कर दिया है। ये दबाव निरंतर बढ़ रहे हैं और समस्या की पेचीदगियों और उलझाव को बढ़ा रहे हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग और शिक्षा–प्रणाली के प्रत्येक अंग द्वारा की गयी समवेत आलोचना से शिक्षाशास्त्रियों का मनोबल गिर गया है। औषधि और उपचार के प्रयत्नों की

बहुलता ने समूची प्रणाली को दिग्भ्रमित कर दिया है। पर्यावरण इतना विषाक्त हो चुका है कि उसमें सुधार के पौधे पनप ही नहीं सकते। क्रांतिकारी विकल्प के लिए न हमारे पास दूरगामी एवं रचनात्मक कल्पनाशक्ति है और न दृढ़ सामाजिक अनुशासन। अब तक पारिभाषिक दृष्टिकोण से यह नहीं बताया गया कि नीति क्या है। इसके सूक्ष्म विवेचन की आवश्यकता भी नहीं है। दार्शनिक दृष्टि से उत्तम आचरण के लक्षण चाहे जो हों, शिक्षक को तो अपने वर्तमान समय और समाज से ही आचरण का आदर्श ग्रहण करना है। समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति जिन गुणों को सम्मानित करते हैं, अध्यापक का कर्त्तव्य उन्हीं गुणों को अपने शिष्यों में उत्पन्न करना, पोषित करना तथा दृढ़ करना है। सभी सद्व्यक्ति यह चाहते हैं कि उनके बच्चों में परिश्रम, आत्मसंयम, दृढ़ता, सत्यप्रियता, अंहिसा इत्यादि सद्गुणों का समुचित और दृढ़ अभ्यास हो जाए। अतः जो शिक्षक इन गुणों का अभ्यास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समझता है, उसे नीति शास्त्र की दार्शनिक समस्याओं पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

परन्तु यदि कोई अध्यापक नीति शास्त्र का भली–भॉति अध्ययन करता है, तो शिक्षा शास्त्र पर उसके विचार और भी निश्चित और यथार्य हो जायेंगे।

शिक्षा तथा समाज :–

अब तक हमने यही बतलाया कि शिक्षा व्यक्तिगत रूप से चरित्र निर्माण का साधन है, परन्तु हम समाज से भिन्न व्यक्ति के पृथक अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर सकते। स्थूल रूप से देखने पर तो व्यक्ति और समाज के स्वार्थो में विरोध सा प्रतीत होता है। प्लेटो और अरिस्टोटिल ने व्यक्ति के स्वार्थ को समाज के स्वार्थ में लीन करके इस समस्या का हल किया। परवर्त्ती युग में जब भिन्न–भिन्न देशों में धर्म का प्राधान्य हुआ, तो शिक्षा का दायित्व अपने आप ही धर्माधिकारियों के हाथों में चला गया।

हमारी शैक्षिक प्राथमिकताएँ आधारहीन हैं, उनमें अनेक विसंगतियाँ हैं और तारतम्य का भी अभाव है। भारतीय संविधान–निर्माताओं ने साक्षरता के प्रसार और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और देशव्यापी बनाने का जो आश्वासन दिया था, वह पूरा नहीं हुआ। सच तो यह है कि इस दिशा में हमने अपने लक्ष्य को कभी गंभीरता से स्वीकार ही नहीं किया। इस स्तर पर शिक्षा का जो भी प्रसार हुआ, उसका महत्त्व परिणाम की दृष्टि से आँका जा सकता है, गुणवत्ता की दृष्टि से नहीं। देश के बहुजन को एक शिक्षक, डेढ़ कमरा, और पाँच कक्षाओं वाले स्कूल ही मिले।

वैसे बिना भवनों के स्कूल भी कम नहीं हैं, राजधानियों तक में कक्षाएँ तंबुओं में लगती हैं। इन संस्थाओं में शिक्षा कम, दिखावा अधिक है। ऐसी शालाओं ने नियोजकों को आँकड़ों का सुख भले ही दिया हो, माध्यमिक और उच्च शिक्षा को मजबूत आधार नहीं दिया। इस कमजोर नींव पर ही माध्यमिक शिक्षा का भवन बना और उच्च–शिक्षा की अट्टालिकाएँ उठीं। स्वाभाविक है कि समाज के कमजोर वर्गों को इन

संस्थाओं से नाममात्र का लाभ ही मिला। इस तबके के विद्यार्थी बड़ी आशा लेकर स्कूल में गए, पर उससे कहीं अधिक निराशा लेकर, पढ़ाई अधूरी छोड़कर वहाँ से बाहर निकल आए। नारी–शिक्षा की हालत भी बहुत कुछ यही रही। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर नवाचार सबसे कम हुए, उनकी चुनौतियों को हम नजर अन्दाज करते रहे। अध्यापन–शास्त्र की लीक से चिपके रहकर हम यह भूल ही गए कि शिक्षार्थियों की पहली और दूसरी पीढ़ियाँ शिक्षा के नए स्वर और प्रौद्योगिकी की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रयोग नहीं हुआ। जो सुधार लाए गए वे या तो सामान्य स्कूलों तक पहुँचे ही नहीं या उनसे कमजोर वर्गों को नुकसान अधिक हुआ और फायदा कम। जिन स्कूलों ने नयी प्रणाली अपनायी है, वे बच्चों पर 'होम वर्क' का बहुत सारा बोझ लाद देते हैं। पढ़े–लिखे माँ–बाप अपने बच्चों की सहायता कर देते हैं, अमीर घरों के बच्चे 'प्राइवेट ट्यूटरों' से सहायता पा लेते हैं, पर उन गरीब घरों के बच्चे, जिनमें स्लेट और पुस्तकें पहली बार आयी हैं, किससे सहायता लें ? शिक्षा–संस्थाओं के माहौल में उन्हें न दिशा–निर्देश मिलता है न सहानुभूति। साथियों के तानों और अध्यापक–अध्यापिकाओं की झिड़कियों से तंग आकर वे अपनी गलियों में लौट आते हैं। वैसे जो शिक्षा उन्हें मिलती है, वह भी उन्हें उनके जीवन–संदर्भों से जोड़ने के बजाय काटती ही है।

सन्दर्भ :–

प्रगतिशील भारत में शिक्षा पृ. 61

शैक्षिक अनुसंधान सांख्यिकी–डॉ0 रामपाल सिंह–विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2009 पृ0–119

प्रभु आर. के. और यू. आर. राव : द माइंड ऑफ महात्मा गाँधी, पृ. 388

काजुबी डब्ल्यू. सेंटेजा : 'एजुकेटिंग द यंग पीपुल ऑफ द वर्ल्ड' में प्रकाशित 'इज द स्कूल एन आब्सोलीट इंस्टीट्यूशन' शीर्षक लेख।

प्राथमिक शिक्षक/जनवरी 2019, पृष्ठ 28–33

भारतीय आधुनिक शिक्षा अप्रैल 2019 पृ. 32– 39

भारतीय आधुनिक शिक्षा अप्रैल 2019 पृ. 5–11

भारतीय आधुनिक शिक्षा जनवरी 2019 अंक 3 वर्ष 39 पृ. 78–84

भारतीय आधुनिक शिक्षा अप्रैल 2019 पृ. 25–31